SKU JOURNAL OF LEX VIBRENT
(NATIONAL PEER REVIEWED E-RESEARCH JOURNAL)
Impact Factor – SJIF 2025 = 5.071
July–September 2026
E-ISSN 3048-7323
Vol-3
Issue-3

भारतीय न्याय व्यवस्था में न्यायिक बिलंब और उसका सामाजिक-आर्थिक प्रभाव- एक अध्ययन

राम मिलन द्विवेदी
सह-प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग
श्री कृष्णा विश्वविद्यालय, छतरपुर, (म.प्र.)

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में न्याय में विलंब का अध्ययन भारतीय परिप्रेक्ष्य में किया गया है। यह वर्तमान समय में एक गंभीर चुनौती है, जो न केवल संबंधित व्यक्ति पर प्रभाव डालती है, बल्कि देश व समाज के अन्य पहलुओं पर भी असर डालती है। यदि पक्षकारों को समय से न्याय नहीं मिलता, तो उसका महत्व एवं प्रभाव कम हो जाता है। वर्तमान समय में एक रिपोर्ट के अनुसार, राष्ट्र की विभिन्न अदालतों में लगभग 5 करोड़ से अधिक मामले लंबित हैं। इनमें दीवानी, भूमि विवाद, आपराधिक मामले और सरकारी अपीलें प्रमुख हैं। न्यायिक विलंब के कई कारण हैं– जिनमें जजों की कमी, न्यायालय में बुनियादी सुविधाओं का अभाव, कठिन कानूनी प्रक्रिया, गवाहों का समय पर उपस्थित न होना, अनावश्यक स्थगन, सरकार की ओर से अधिक अपीलें और डिजिटल तकनीक का अपर्याप्त उपयोग आदि शामिल हैं। इन समस्याओं के कारण मुकदमों को निपटाने में कई-कई वर्ष लग जाते हैं।

सामाजिक व आर्थिक दृष्टिकोण से न्याय में विलंब, पीड़ित पक्षकारों में मानसिक दबाव, सामाजिक कलंक और अविश्वास को बढ़ाता है। विलंब अपराधियों को दंड से बच निकलने की संभावना पैदा करता है। आर्थिक दृष्टिकोण से देखें तो लंबित मामले व्यावसायिक लेन-देन, निवेश और आर्थिक क्रियाओं में असमंजस पैदा करते हैं। जिस वजह से देश में आर्थिक गतिविधियां मंद पड़ जाती हैं। ज़मीन व संपत्ति के मामलों में पूंजी कई वर्षों तक अप्रयोज्य पड़ी रह जाती है। इन समस्याओं के समाधान हेतु न्यायिक संसाधनों में वृद्धि, प्रक्रिया में सुधार, विवाद निपटान हेतु नई प्रणाली विकसित करना, न्याय में भ्रष्टाचार को समाप्त करना और

समय से न्याय सुलभ कराना आवश्यक है। यह न केवल व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा करता है, बल्कि देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था तथा आर्थिक प्रगति को भी मजबूत करता है।

प्रमुख शब्द

न्याय, विलंब, सामाजिक, आर्थिक, व्यवस्था, प्रभाव, मामला।

परिचय

विलंब हर जगह अच्छा नहीं होता, हर कार्य समय से पूरा होना चाहिए। फिर जहां न्याय की बात हो, उसमें विलंब लोगों के जीवन को संकट में डाल देता है। भारत में न्याय में देरी बहुत बड़ी समस्या है। यदि न्याय में विलंब की बात करें, तो यह वह स्थिति है जब लोग परेशान होकर न्यायालय के पास जाते हैं और उन्हें सही समय पर न्याय नहीं मिल पाता। कई महीनों व वर्षों ही नहीं, कभी-कभी संबंधित व्यक्ति का पूरा जीवन ही समाप्त हो जाता है। यह बहुत ही जटिल समस्या है। करोड़ों मामले अदालतों में कई वर्षों से विचाराधीन पड़े हैं। कई बार तो देश के सर्वोच्च न्यायालय को अधीनस्थ न्यायालयों से कहना पड़ता है कि न्यायाधीशों को यह समझना चाहिए कि किसी को न्याय देना केवल नौकरी नहीं है, बल्कि न्याय देने हेतु यह एक मिशन है। हर समाज में व्यक्तियों और समूहों के बीच विवाद होता है। लोग न्याय हेतु न्यायालय जाते हैं, परंतु न्याय में बहुत देरी लगती है। इससे लोगों का सामाजिक व आर्थिक जीवन तबाह होता है। बार-बार न्यायालय में प्रतिवादियों की उपस्थिति से उनके धन का अपव्यय होता है व उनकी सामाजिक जिम्मेदारी भी प्रभावित होती है। समय से न्याय न मिलना, न्याय न मिलने के ही बराबर है। मामले पंजीकृत होने से लेकर निर्णय तक एक लंबा समय लगता है, जिससे व्यक्ति का धैर्य और साहस खत्म होने लगता है। कई बार न्याय में देरी की वजह से अप्रिय घटनाएं भी घटित हो जाती हैं। यदि वर्तमान समय में देखा जाए तो भारत के विभिन्न न्यायालयों में लगभग 5.9 करोड़ मुकदमे विचाराधीन हैं, जिनमें सबसे ज्यादा संख्या जिला अदालतों में लंबित मुकदमों की है।

साहित्य समीक्षा

भारतीय न्याय व्यवस्था में न्यायिक विलंब एवं न्याय तक पहुँच के सामाजिक-आर्थिक प्रभावों का अध्यय भारतीय न्याय व्यवस्था में न्यायिक विलंब और न्याय तक पहुँच के सामाजिक-आर्थिक प्रभावों का विषय लंबे समय से विधिवेत्ताओं, समाजशास्त्रियों, न्यायविदों तथा विभिन्न सरकारी संस्थाओं के मध्यय विचार का विषय रहा है। समय-समय पर इसका अध्यदयन किया गया है।

गैलांटर मार्क- ने अध्यआयन किया और अपनी पुस्तक Competing Equalities: Law and the Backward Classes in India (1984) में भारतीय समाज में कानून, समानता और सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के संबंधों का विश्लेषण किया है। उनका अध्ययन इस बात को समझने में महत्वपूर्ण है कि सामाजिक एवं आर्थिक असमानताएँ न्याय तक पहुँच को किस प्रकार प्रभावित करती हैं। आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्तियों के लिए लंबी न्यायिक प्रक्रिया, अधिवक्ता शुल्क, न्यायालय तक आने-जाने का खर्च तथा रोजगार और आय का नुकसान न्याय प्राप्ति को कठिन बना देते हैं।

सतहे एस.पी. - ने अध्ययन किया और अपनी पुस्तक Judicial Activism in India (2002) में भारतीय न्यायपालिका की भूमिका, संवैधानिक अधिकारों के संरक्षण और न्यायिक सक्रियता के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण किया है। उनका अध्ययन न्यायपालिका की जवाबदेही तथा नागरिकों को न्याय उपलब्ध कराने के महत्व को समझने में उपयोगी है।

अय्यर कृष्ण वी.आर. न्यायमूर्ति- ने अपने न्यायिक विचारों और लेखों में न्याय को सामान्य नागरिक के जीवन, स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा से जोड़कर देखा है। उनके अनुसार न्याय व्यवस्था का उद्देश्य केवल कानूनी प्रक्रिया पूरी करना नहीं, बल्कि प्रत्येक नागरिक को वास्तविक न्याय उपलब्ध कराना होना चाहिए।

वर्मा जे.एस. न्यायमूर्ति- ने अपने न्यायिक दृष्टिकोण में संवैधानिक मूल्यों, मानवाधिकारों तथा न्यायिक उत्तरदायित्व के महत्व पर बल दिया। इन न्यायविदों के विचारों से यह स्थापित होता है कि न्यायिक विलंब व्यक्ति के अधिकारों को प्रभावित करने के साथ-साथ न्यायपालिका की

विश्वसनीयता को भी कमजोर करता है। न्यायिक विमर्श में प्रचलित सिद्धांत Justice delayed is justice denied इसी वास्तविकता को अभिव्यक्त करता है।

भारतीय विधि आयोग की रिपोर्टें मे कहा गया है कि विशेष रूप से विधि आयोग की 245वीं रिपोर्ट (2014), जिसका शीर्षक Arrears and Backlog: Creating Additional Judicial (Wo)manpower है, न्यायालयों में लंबित मामलों तथा न्यायिक मानव संसाधनों की आवश्यकता का विश्लेषण करती है। इस रिपोर्ट में न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाने, न्यायिक संस्थाओं की कार्यक्षमता में सुधार करने तथा मामलों के शीघ्र निस्तारण के लिए आवश्यक उपायों पर बल दिया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि न्यायिक विलंब के पीछे न्यायाधीशों की कमी, न्यायालयों की अपर्याप्त आधारभूत संरचना तथा प्रशासनिक समस्याएँ महत्वपूर्ण कारण हैं।

राष्ट्रीय न्यायिक डेटा ग्रिड (National Judicial Data Grid-NJDG) भारतीय न्यायपालिका में लंबित एवं निस्तारित मामलों से संबंधित आधिकारिक आँकड़ों का महत्वपूर्ण स्रोत है। वर्ष 2023 के आसपास उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार देश की विभिन्न अदालतों में लगभग 5.3 से 5.4 करोड़ मामले लंबित थे। इतनी बड़ी संख्या में मुकदमों का लंबित रहना न्याय व्यवस्था के समक्ष उपस्थित गंभीर चुनौती को दर्शाता है। लंबित मामलों के कारण संपत्ति विवाद, व्यावसायिक लेन-देन, आर्थिक निवेश तथा व्यक्तिगत अधिकारों से जुड़े निर्णय प्रभावित होते हैं। इसके परिणामस्वरूप नागरिकों को आर्थिक व्यय, समय की हानि और मानसिक तनाव का सामना करना पड़ता है। विशेष रूप से निम्न आय वर्ग के लोगों के लिए लंबी न्यायिक प्रक्रिया आर्थिक संकट और सामाजिक असुरक्षा का कारण बन सकती है।

उपरोक्त साहित्य समीक्षा एवं आधिकारिक रिपोर्टों के समग्र अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारतीय न्याय व्यवस्था में न्यायिक विलंब एक बहुआयामी समस्या है, जिसके प्रभाव केवल न्यायिक संस्थाओं तक सीमित नहीं हैं।

अध्ययन का उद्देश्य -

- भारत में न्याय में देरी के कारणों को उजागर करना।

- न्याय में विलंब की संस्थागत एवं संरचनात्मक समस्याओं का विश्लेषण करना।
- संभावित समाधान एवं सुझाव प्रस्तुत करना।

महत्व -

- न्याय में देरी से उसकी गुणवत्ता एवं पहुंच दोनों ही अत्यधिक कमजोर हो जाती हैं।
- कमजोर न्याय प्रणाली लोगों के विश्वास और समाज में सामाजिक प्रतिष्ठा को कम करती है तथा आर्थिक क्षति पहुंचाती है।

शोध पद्धति एवं समंक- यह एक विश्लेषणात्मक शोध है। इसमें द्वितीयक समंकों का समावेश किया गया है; जैसे समय-समय पर प्रकाशित सरकारी दस्तावेज़, सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट, अभियोजन निदेशालय की सूचना, पुलिस विभाग के रिकॉर्ड आदि, एवं कुछ जानकारी के लिए लोगों के व्यक्तिगत अनुभव भी प्राप्त किए गए हैं। इसमें 2015 से 2026 की समयावधि के बीच के समंकों का प्रयोग किया गया है।

वर्तमान स्थिति- वर्तमान समय (2026) में देश में कुल लंबित मुकदमे 5.9 करोड़ हैं। जिला न्यायालयों एवं उनके अधीनस्थ न्यायालयों में लंबित मामलों की संख्या सबसे अधिक 5.24 करोड़ है। उच्च न्यायालयों में 65.32 लाख तथा देश के सर्वोच्च न्यायालय में 95 हजार से अधिक मामले विचाराधीन हैं।

न्यायाधीश-जनसंख्या अनुपात- प्रति 10 लाख की आबादी पर केवल 15-20 न्यायाधीश हैं। यदि मानक की बात करें, तो 10 लाख की आबादी पर कम से कम 50 जज होने चाहिए।

न्यायिक विलंब - संरचनात्मक और संस्थागत समस्या- देश में न्याय में विलंब के लिए केवल कुछ प्रक्रियाएं ही जिम्मेदार नहीं हैं, बल्कि यह संरचनात्मक और संस्थागत समस्या बन चुकी है। यह लोगों के न्याय तक पहुंचने के मार्ग में बाधा डालती है साथ ही साथ न्याय व्यवस्था

लोगों के विश्वास को कम करती है, जिससे समाज में असंतोष बढ़ता है। लोगों के धन का नुकसान और यह सब, कहीं न कहीं देश की संरचनात्मक क्षमताओं और संस्थागत विफलताओं को भी उजागर करता है।

सर्वप्रथम न्याय प्रणाली में संरचना की कमजोरी की बात करें, तो हम पाते हैं कि देश में अत्यधिक जनसंख्या के अनुपात में न्यायाधीशों की संख्या बहुत ही कम है। देखा जाए तो प्रति 10 लाख की जनसंख्या पर मात्र 16 से 22 न्यायाधीश ही कार्य कर रहे हैं। जबकि उच्चतम न्यायालय व भारत का विधि आयोग भी यह बात कह चुका है कि कम से कम 10 लाख की आबादी पर 50 न्यायाधीशों की नियुक्ति होनी चाहिए, परंतु ऐसा नहीं हो पा रहा है। न्यायालयों में पदों का रिक्त होना भी न्याय में देरी का कारण बन रहा है। औसतन देखा जाए तो उच्च न्यायालयों में लगभग 29 प्रतिशत और जिला अदालतों में 25 से 28 प्रतिशत पद कई वर्षों से खाली पड़े हैं। यह स्थिति न्यायाधीशों की कार्यकुशलता पर मानसिक व प्रशासनिक दबाव में वृद्धि करती है, जिससे समय पर निर्णय लेने में गति नहीं आ पाती और गुणवत्ता पर भारी प्रभाव पड़ता है।

इन्ही समस्याओं के अंतर्गत न्यायालयों का अत्यधिक केन्द्रीकरण, कार्यप्रणाली में पारदर्शिता का अभाव एवं प्रक्रिया में तकनीकी कुशलता की कमी मुख्य है। विशेष रूप से जिला न्यायालयों में, जहां 80 प्रतिशत से अधिक मामले लंबित हैं, वहां ज़रूरी बुनियादी ढांचा, अनुभवी कर्मचारी और डिजिटल तकनीक की बहुत कमी है। ज़्यादातर अदालतों में आज भी फाइलें मैनुअली ही रखी जाती हैं, जिससे फाइलें कभी-कभी गुम भी हो जाती हैं तथा तारीखों में भ्रम जैसी स्थिति उत्पन्न होती है। जहां पर डिजिटल सुविधा उपलब्ध भी है, वहां कर्मचारियों की लापरवाही के कारण उसका सही तरीके से उपयोग नहीं हो पा रहा है। इसके अलावा, न्यायिक समय का एक बड़ा हिस्सा न्याय से इतर कार्यों में लग जाता है। इनमें सरकारी फाइलों की समीक्षा, चुनाव ड्यूटी आदि शामिल हैं, जो स्थायी रूप से प्रशासनिक बोझ उत्पन्न करती हैं और कहीं न कहीं न्याय की गति में अवरोध उत्पन्न करती हैं।

देश में कानूनी प्रक्रियाएं स्वयं में भी अधिक जटिल और लोचदार हैं। जैसे- दीवानी प्रक्रिया संहिता (CPC), भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता (BNSS) आदि में तमाम दलीलों,

स्थगनों एवं अपीलों की अनुमति होती है, जिनका उपयोग करके पक्षकार कई वर्षों तक मामले को लंबित रखे रहते हैं। कई बार अभियोजन एवं वकील भी जानबूझ कर मुकदमों में देरी करवाते हैं, ताकि पक्षकारों से अतिरिक्त लाभ उठाया जा सके। इन्हीं कारणों की वजह से एक साधारण मुकदमे को भी 10-20 वर्षों तक लंबित रखा जा सकता है, जिससे पीड़ित पक्ष को सामाजिक, मानसिक, आर्थिक एवं शारीरिक रूप से नुकसान होता है।

संस्थागत समस्याओं के अंतर्गत, सरकार द्वारा छोटे-छोटे मामलों को भी न्यायालय ले जाना न्यायिक विलंब को बढ़ाने वाला एक बड़ा कारण है। यदि आंकड़ों की बात करें, तो लगभग 55 प्रतिशत मामलों में कहीं न कहीं सरकार ही वादी या प्रतिवादी है। सरकारी लोग मामले को टालते रहते हैं तथा जिम्मेदारी से सरकार का पक्ष नहीं रखते, जिससे अनावश्यक विलंब होता है। कभी-कभी तो सरकार की तरफ से सरकारी गवाह बने अधिकारी व कर्मचारी कई बार बुलाने के बाद भी अदालत में गवाही देने नहीं आते, जिस वजह से मामले अंतिम निर्णय तक नहीं पहुंच पाते हैं। भारत में न्याय के क्षेत्र में मध्यस्थता की बहुत बड़ी भूमिका होती थी। पहले लोग आपस में ही मध्यस्थता के माध्यम से मामले निपटा लेते थे, किन्तु वर्तमान में यह प्रणाली विफलता की ओर है। सरकार की ओर से वैकल्पिक विवाद समाधान (ADR) का प्रयोग किया जाता है, किन्तु इसका योगदान बहुत सीमित है। कई देशों में ADR के द्वारा छोटे-मोटे मामले न्यायालय से बाहर ही समाप्त करने का प्रतिशत लगभग 60-70 प्रतिशत है, लेकिन भारत में यह बहुत कम है।

न्यायिक संरचना में विशेष न्यायालयों एवं फास्ट ट्रैक अदालतों (Fast Track Courts) का दायरा भी सीमित है, जिससे संस्थागत विलंब बढ़ता है। मुख्य रूप से महिलाओं, बच्चों, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए इनकी स्थापना की गई थी लेकिन कुछ राज्य इन अदालतों को समय पर क्रियान्वित नहीं करते। वर्तमान में देश में घोषित लगभग 2600 फास्ट ट्रैक अदालतों में से केवल 785 ही सक्रिय भागीदारी निभा रही हैं।

सामाजिक प्रभाव- न्याय किसी भी देश की व्यवस्था का मूल स्तंभ होता है, किन्तु यदि न्याय समय से न मिल सके तो वह कमजोर पड़ जाता है। उसके महत्व में भी कमी आती है, जिस वजह से समाज में अव्यवस्था व सामाजिक असमानता व्याप्त होती है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य- भारत में आज़ादी के पहले से ही न्याय व्यवस्था में जटिलता विद्यमान थी। आज़ादी के बाद कुछ सुधार ज़रूर किये गए, परंतु विचाराधीन मामलों की संख्या में निरंतर वृद्धि होती रही और आज यह एक स्थायी समस्या बन गई है।

सामाजिक जीवन पर प्रभाव- न्याय में देरी से संबंधित व्यक्ति और उसके परिवार पर मानसिक तनाव एवं सामाजिक बोझ पड़ता है। समाज में दोषियों के प्रति भय कम हो जाता है तथा न्याय में देरी के कारण पीड़ितों में असुरक्षा बढ़ती है।

शिक्षा, स्वास्थ्य व रोजगार पर प्रभाव- लंबे समय तक चलने वाले मामलों के कारण पीड़ित व्यक्ति व परिवार आर्थिक संकट में फंस जाता है। इस वजह से बच्चों की शिक्षा प्रभावित होती है। मानसिक स्थिति ठीक न होने के कारण अक्सर स्वास्थ्य खराब रहता है एवं आर्थिक क्षति निरंतर चलती रहती है। बार-बार वकीलों को पैसा देना और आने-जाने का खर्च वहन करना– इन सबसे आर्थिक दबाव भी बढ़ता है।

व्यक्तियों के बीच अविश्वास- जब किसी व्यक्ति को वर्षों तक न्याय नहीं मिल पाता, तो उसका न्यायालय पर से विश्वास कम हो जाता है। यह स्थिति जनतंत्र की विश्वसनीयता को चुनौती देती है।

मानवाधिकार और मानवीय मूल्यों पर प्रभाव- न्याय में देरी से व्यक्ति के मानवाधिकारों का हनन होता है क्योंकि निर्दोष व्यक्ति जेल में बंद रहता है, जबकि दोषी समाज में स्वतंत्र घूमता

है। इससे व्यक्ति की स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा कमजोर हो जाती है तथा सामाजिकता पर भी बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है।

वादी और अभियुक्त की स्थिति- न्याय में विलंब से पीड़ित पक्ष कई-कई वर्षों तक न्याय के लिए प्रतीक्षा करता है। वहीं, मुकदमों की जटिल प्रक्रिया और तारीख पर तारीख के कारण दोषी व्यक्ति के जीवन में भी हर समय तलवार लटकती रहती है। दोनों पक्ष मानसिक, सामाजिक व आर्थिक रूप से टूट जाते हैं।

सामाजिक शांति प्रभावित- जब अपराध करने वालों को दोषी सिद्ध होने और उन्हें दंड मिलने में कई वर्ष लग जाते हैं, तो समाज में भय का वातावरण उत्पन्न होता है। कानून व्यवस्था की स्थिति बिगड़ती है, जिस वजह से सामाजिक अव्यवस्था और आपसी तालमेल पर गंभीर असर पड़ता है।

महिलाओं, बच्चों एवं कमजोर वर्ग पर प्रभाव- महिला उत्पीड़न, बच्चों का शोषण और संपत्ति विवाद से जुड़े मामले कई-कई वर्षों तक चलते रहते हैं। ग्रामीण व आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग कानूनी खर्च नहीं उठा पाते, जिसका परिणाम यह होता है कि वे न्याय पाने से भी वंचित रह जाते हैं।

अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य व तुलनात्मक प्रभाव- विकासशील देशों की तरह विकसित देशों में न्याय व्यवस्था इतनी धीमी नहीं है; वहां समयबद्ध न्याय के लिए मज़बूत तंत्र उपस्थित है। हमारे देश की तुलना में वहां मामले जल्दी निपटाए जाते हैं। भारत को वहां से कुछ सीख लेनी चाहिए, जिससे लोगों का समय, धन व स्वास्थ्य बच सके।

सुधारात्मक उपाय व सुझाव-

- न्यायिक प्रक्रिया में पड़े रिक्त पदों को भरना चाहिए और प्रक्रिया को सरल बनाया जाना चाहिए।

- न्यायालयों में नई तकनीक का अधिक से अधिक प्रयोग किया जाना चाहिए।
- अनावश्यक और तर्कहीन आपत्तियों से बचना चाहिए।
- लोक अदालतों व मध्यस्थता केंद्रों का विस्तार होना चाहिए।
- वैकल्पिक विवाद समाधान व्यवस्था में सुधार होना आवश्यक है।
- न्यायाधीशों के लिए बाध्यकारी नियम होने चाहिए, जिससे उनका नैतिक आचरण और सत्यनिष्ठा सुनिश्चित हो सके।
- न्याय व्यवस्था में जवाबदेही तय होनी चाहिए और अनुशासनात्मक गतिविधियों में पारदर्शिता को बढ़ाना चाहिए।
- कर्मचारियों के रिक्त पड़े पदों को भरना चाहिए, जिससे कार्यों का निष्पादन समय पर पूरा किया जा सके।
- गरीब लोगों को न्याय मिल सके, इसके लिए न्यायालय में भ्रष्टाचार पर कठोर निगरानी रखनी चाहिए।
- न्यायालय में वादी व प्रतिवादी से कर्मचारियों द्वारा पैसा लेने के तरीकों पर तत्काल रोक लगनी चाहिए।
- गरीब, अनाथ व महिलाओं को निःशुल्क कानूनी सहायता मिलनी चाहिए।

निष्कर्ष

भारतीय न्याय व्यवस्था में देरी न केवल एक कानूनी और नैतिक समस्या है, बल्कि यह सामाजिक-आर्थिक विकास को अवरुद्ध करने का कारण भी है। उपरोक्त समंक यह दर्शाते हैं कि करोड़ों मामले कई-कई वर्षों तक विचाराधीन रहते हैं। न्याय प्रक्रिया अत्यंत धीमी है और न्यायालयों में जजों की कमी एक बहुत ही गहरी समस्या है। न्याय में देरी से देश के सकल घरेलू उत्पाद पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है एवं निवेश हतोत्साहित होता है। लोगों का न्याय के प्रति भरोसा कम होता जा रहा है। सुधार हेतु देश में मानव संसाधन में वृद्धि, नई तकनीक का प्रयोग, प्रक्रिया में सरलता, व्यावहारिक समाधान और संरचना में सुधार आवश्यक है। इन सभी बातों का पालन करके देश को एक मजबूत न्याय प्रणाली दी जा सकती है।

संदर्भ ग्रंथ

1.माननीय सर्वोच्यथ न्यालयालय के महत्वम पूर्ण निर्णय-

1. Khatoon, Hussainara v. Home Secretary, State of Bihar, (1979) 3 SCC 532 त्वरित सुनवाई का अधिकार।
2. Rehman, Abdul Antulay v. R.S. Nayak, (1992) 1 SCC 225 – त्वरित सुनवाई के संवैधानिक सिद्धांत।
3. Supreme Court Legal Aid Committee v. Union of India, (1994) 6 SCC 731 – विचाराधीन कैदी और लंबा कारावास।
4. Common Cause v. Union of India, (1996) 4 SCC 33 – छोटे आपराधिक मामलों में लंबित कार्यवाही।
5. Rao V. P. Ramachandra v. State of Karnataka, (2002) 4 SCC 578 – त्वरित सुनवाई और निश्चित समय-सीमा का प्रश्न।
6. Ahmad, Imtiyaz v. State of Uttar Pradesh, Criminal Appeal Nos. 254-262 of 2012, निर्णय दिनांक 2 जनवरी 2017 – न्यायिक क्षमता और लंबित मामले

2. पुस्तकें एवं शैक्षणिक प्रकाशन-

7. Baxi, Upendra (2012). The Crisis of the Indian Legal System. Vikas Publishing, New Delhi.
8. Galanter, Marc (1984). Competing Equalities: Law and the Backward Classes in India. Oxford University Press.
9. Sathe, S.P. (2002). Judicial Activism in India: Transgressing Borders and Enforcing Limits. Oxford University Press.
10. न्यायमूर्ति अय्यर, वी.आर. कृष्ण (2001). भारतीय न्यायपालिका : समस्याएँ और समाधान. दिल्ली : ईस्टर्न बुक कम्पनी।

11. बक्शी, उपेन्द्र (2005). भारतीय विधिक व्यवस्था का संकट. दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन।
12. वर्मा जे.एस. न्यायमूर्ति (2000). न्यायिक सुधार और भारतीय लोकतंत्र. भारतीय विधि संस्थान, नई दिल्ली।
13. सतहे एस.पी. (2008). भारतीय न्यायपालिका और न्यायिक सक्रियता ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (हिंदी अनुवाद संस्करण)।
14. भारत सरकार, विधि आयोग (2014). भारतीय न्यायालयों में मामलों का लंबित बोझ और समाधान. नई दिल्ली।

2. सरकारी/संस्थागत रिपोर्टें-

15. राष्ट्रीय न्यायिक डेटा ग्रिड (NJDG) - भारतीय न्यायालयों में लंबित मामलों का सांख्यिकीय विश्लेषण (2023)।
16. विधि एवं न्याय मंत्रालय, भारत सरकार - भारतीय न्यायालयों का वार्षिक प्रतिवेदन (2022, 2023)।

3. ऑनलाइन स्रोत एवं वेब डेटा-

17. StudyIQ (2025). Judicial Backlog in India.
18. Wikipedia (2025). Pendency of Court Cases in India.

4. समाचार लेख-

19. द हिंदू (हिंदी संस्करण) (2023). "भारतीय न्यायालयों में लंबित मामलों की संख्या 5 करोड़ पार।"
20. दैनिक भास्कर (2024). "लाखों केसों के कारण न्यायपालिका चरमराई, समाधान क्या?"